A Pratibha Spandan Journal

SWAR SINDHU
(National Peer-Reviewed/Refereed Journal of Music)
ISSN 2320–7175 (O) | Volume 14, Issue 01, January-June, 2026

दोआबा क्षेत्र की तालबद्ध पहचान पर 1947 के विभाजन का प्रभाव

Shivansh[1], Dr. Kulwinder Singh[2]

1 Ph.D. Scholar, School of Liberal & Creative Arts, Lovely Professional University, Jalandhar, Punjab, India
2 Associate Professor, School of Liberal & Creative Arts, Lovely Professional University, Jalandhar, Punjab, India

Read the Article Online

OPEN ACCESS

Cite this Article

Published on 30 April, 2026

Shivansh and Singh K. (2026). doaba kshetra ki talbaddh pehchan par 1947 ke vibhajan ka prabhav. Swar Sindhu, 14(1), 48-53.

सार

वर्ष 1947 में भारत का विभाजन केवल नई राजनीतिक सीमाओं के निर्धारण से कहीं अधिक था; यह पंजाब के सांस्कृतिक परिदृश्य, विशेषकर ब्यास और सतलुज नदियों के बीच स्थित 'दोआबा' क्षेत्र का एक विस्थापन भी था। यद्यपि विभाजन से उत्पन्न राजनीतिक उथल-पुथल और मानवीय त्रासदी पर साहित्य में व्यापक रूप से चर्चा की गई है, परंतु इस बात पर साहित्य में काफी शून्यता है कि इस घटना ने दोआबा की संगीत परंपरा को किस प्रकार प्रभावित किया। इस क्षेत्र ने लाहौर, अपना सांस्कृतिक हृदय खो दिया, और इसके अधिकांश प्रमुख संगीतकारों को पलायन करने के लिए मजबूर होना पड़ा। कुछ समय के लिए ऐसा लगा मानो संगीत ही खामोश हो गया हो, जैसे दोआबा की लय ठहर सी गई हो। फिर भी, वह खामोशी अस्थायी थी।

यह शोध पत्र इस बात का अन्वेषण करता है कि इस क्षेत्र की सांगीतिक पहचान ने अपनी वापसी की राह कैसे खोजी। आकाशवाणी जालंधर, दूरदर्शन, और लंबे समय से चले आ रहे संगीत सम्मेलन जैसे श्री बाबा हरिवल्लभ संगीत सम्मेलन एवं बावरा संगीत सम्मेलन जैसे संगठनों और कार्यक्रमों ने दोआबा की ताल-वाद्य परंपराओं को पुनर्जीवित करने और यहां तक कि उनका विस्तार करने में मदद की। केवल विरासत में मिले मौखिक ज्ञान पर निर्भर रहने के बजाय, दोआबा का संगीत अपना मूल सार बनाए रखते हुए अधिक व्यापक, मानकीकृत और धर्मनिरपेक्ष रूप में विकसित होने लगा। अंततः, विभाजन दोआबा की ताल को खामोश नहीं कर सका। इसने उन्हें परिस्थितियों के अनुकूल ढलने के लिए विवश किया, और उस परिवर्तन से कुछ नया तथा स्थायी उभर कर सामने आया।

***मूल शब्द** : दोआबा, आकाशवाणी, दूरदर्शन, ताल परंपरा, तबला, विभाजन*

1. प्रस्तावना

संगीत किसी भी समाज की सांस्कृतिक चेतना का सबसे पारदर्शी दर्पण होता है। 1947 में पंजाब के विभाजन ने सदियों से विकसित हो रही उस साझी सांगीतिक संस्कृति को दो हिस्सों में बांट दिया, जिसे हिंदू, मुस्लिम और सिख कलाकारों ने मिलकर सींचा था। पंजाब का 'दोआबा' क्षेत्र इस त्रासदी का एक प्रमुख केंद्र था।

दोआबा क्षेत्र की ताल परंपरा—जिसमें तबला, पखावज, जोड़ी और ढोल वादन शामिल हैं—अपनी 'तैयारी', 'खुले बाज' और 'पखावज अंग' के लिए संपूर्ण भारत में विख्यात रही है। यह वह भूमि है जिसने भारतीय शास्त्रीय संगीत को ऐसे तबला वादक दिए हैं, जिनकी थाप ने पूरे उपमहाद्वीप के संगीत परिदृश्य को प्रभावित किया। परंतु 1947 के बटवारे ने उस्तादों को उनके शागिर्दों से, वादकों को उनके साज़ों से, और एक पूरी पीढ़ी को उनकी जड़ों से उखाड़ फेंका। इस क्षेत्र की पेशेवर परंपरा की रीढ़ रहे अधिकांश मुस्लिम संगीतकार उस पार चले गए जो पाकिस्तान बन गया। इस बीच, हिंदू और सिख शरणार्थी पूर्वी पंजाब आ गए। पुरानी दुनिया, अपने सहज सांस्कृतिक आदान-प्रदान के साथ, पूरी तरह गायब हो गई।

प्रस्तुत शोध पत्र इस बात का विश्लेषण करता है कि 1947 के आघात के बाद दोआबा की इस तालबद्ध पहचान का क्या हुआ, इसने कैसे खुद को पुनर्जीवित किया और इस पुनर्जागरण में राज्य-प्रायोजित प्रसारण माध्यमों का क्या योगदान रहा।

2. दोआबा की भौगोलिक एवं ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

दोआबा पंजाब का एक क्षेत्र है; 'दोआबा' शब्द का शाब्दिक अर्थ "दो नदियों के बीच की भूमि" है। दोआबा ब्यास और सतलुज नदियों के बीच स्थित है और इसमें जालंधर, होशियारपुर, कपूरथला और नवांशहर ज़िले शामिल हैं। यह क्षेत्र पंजाब का सांस्कृतिक हृदय रहा है। यह क्षेत्र अपनी कृषि समृद्धि के साथ-साथ कला और साहित्य के संरक्षण के लिए भी जाना जाता रहा है। यहाँ की भूमि उपजाऊ, समृद्ध और हमेशा प्रगतिशील रही है। सांगीतिक दृष्टि से, दोआबा की भौगोलिक स्थिति ने इसे एक अनूठा लाभ प्रदान किया। यह एक ओर लाहौर (जो कला का एक बड़ा केंद्र था)

और दूसरी ओर दिल्ली के मध्य एक सांस्कृतिक पुल का काम करता था। उत्तर भारतीय शास्त्रीय संगीत के क्षेत्र में, दोआबा ने तबले के पंजाब घराने के लिए रीढ़ की हड्डी के रूप में काम किया। तैयारी, खुले बाज और पखावज अंग के लिए पहचाने जाने वाली यह ताल परंपरा यहाँ कपूरथला जैसी रियासतों, संपन्न जमींदारों और सिख धार्मिक संस्थानों के संरक्षण में फली-फूली। इन सभी ने संगीत को जीवित रखने में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

3. विभाजन-पूर्व का परिवेश

विभाजन-पूर्व दोआबा में, संगीत धार्मिक सीमाओं से बंधा नहीं था। इसकी जड़ें एक पेशेवर जाति व्यवस्था में थीं जो आस्था से कहीं अधिक गहरी थी।

3.1 रबाबी और मिरासी परंपराएँ

दोआबा की ताल के दो मुख्य संरक्षक थे: रबाबी और मिरासी।

क) रबाबी परंपरा

दोआबा की लय का आध्यात्मिक केंद्र गुरुद्वारे थे। सुल्तानपुर लोधी और करतारपुर जैसी जगहें गुरमत संगीत से गूंजती थीं। यहाँ रबाबी, जो भाई मर्दाना के मुस्लिम वंशज थे, कीर्तन के लिए लयबद्ध संगत देकर गुरबानी भजनों को जीवंत करते थे। वे उस गहरी, गूंजने वाली ध्वनि के उस्ताद थे जो पंजाब शैली की धड़कन थी। रबाबी आधुनिक तबले का उपयोग नहीं करते थे, वे 'जोड़ी' (जिसे आटे वाला धामा भी कहते हैं) बजाते थे। उनकी शैली धीमी और राजसी थी, जो गंभीर, ध्यानपूर्ण ध्रुपद-शैली के भजनों के लिए एकदम उपयुक्त थी।

जब विभाजन हुआ, मुस्लिम होने के कारण लगभग सभी रबाबी पाकिस्तान चले गए। अचानक, सिख पूजा-पद्धति ने अपनी धड़कन खो दी। दैनिक इबादत से पंज ताल और चारताल जैसी पुरानी और जटिल तालें गायब हो गईं; और उनकी जगह कहरवा और दादरा जैसी सरल तालों ने ले ली, जिस से इस क्षेत्र की लयबद्ध जटिलता में भारी गिरावट आई।

ख) मिरासी समुदाय

होशियारपुर और नवांशहर के गाँवों में, मिरासी समुदाय ही था जिसने इस संस्कृति को जीवित रखा था। वे वंशावलीविदों और संगीतकारों के रूप में काम करते थे। मिरासी केवल संगीतकार नहीं थे, वे ग्रामीण इलाकों में तबले के मुख्य शिक्षक भी थे। उनके छात्र सभी धर्मों से आते थे, गुरु-शिष्य परंपरा धार्मिक और सामुदायिक सीमाओं से परे थी।

मिरासियों ने जो कुछ भी सिखाया वह उनकी यादों में था, कागज़ पर नहीं। उन्होंने संगीत को सुनकर आगे बढ़ाया, कुछ भी लिखा नहीं गया था, और 'गंडा बंधन' नामक एक अनुष्ठान के ज़रिए यह ज्ञान छात्र को दिया जाता था।

जब 1947 में विभाजन हुआ और मुस्लिम मिरासी परिवार लायलपुर या लाहौर चले गए, तो वे अपने साथ सदियों की अलिखित रचनाएँ ले गए। दोआबा के भारतीय हिस्से में केवल कुछ टुकड़े ही बचे थे, जो इसकी संगीत विरासत की एक खंडित स्मृति मात्र थी।

3.2 लाहौर और जालंधर का सांगीतिक संवाद

विभाजन से पहले, लाहौर और जालंधर पंजाब की संगीत संस्कृति के जुड़वां शहरों की तरह थे। पंजाब घराने के प्रमुख स्तंभ, मियां कादर बक्श लाहौर में रहते थे, लेकिन उनका प्रभाव दोआबा तक फैला हुआ था। संगीतकार कपूरथला के शाही दरबार और लाहौर की संगीत महफ़िलों के बीच बेरोकटोक आते-जाते थे। जालंधर वह जगह बन गया था जहाँ संगीतकार लाहौर में सीखी गई विद्या का परीक्षण करते और उसे निखारते थे। 1947 में वह सब रातोंरात बदल गया; जो एक जीवंत और सक्रिय सांस्कृतिक आदान-प्रदान था, वह एक कठोर और सैन्य कृत सीमा में तब्दील हो गया।

3.3 रियासती दरबार और घराना परंपरा

पंजाब घराने के तबले का उद्भव यद्यपि लाहौर के आस-पास माना जाता है, परंतु इसका वास्तविक विकास और विस्तार दोआबा में हुआ। शाम चौरासी घराना (होशियारपुर) यद्यपि गायन के लिए प्रसिद्ध था, परंतु गायकी के साथ संगत करने वाले ध्रुपद-अंग के पखावज और तबला वादकों की एक लंबी खेप इसी क्षेत्र से निकली।

कपूरथला रियासत और जालंधर के धनाढ्य संगीत प्रेमियों के संरक्षण में तबला वादन की एक अत्यंत जटिल और गणितीय शैली विकसित हुई। कपूरथला केवल एक रियासत नहीं थी; लोग इसे "पंजाब का पेरिस" कहते थे। कपूरथला रियासत के शासकों ने पटियाला, दिल्ली और ग्वालियर से उत्कृष्ट संगीतकारों और ताल वादकों को आश्रय दिया। महाराजा जगतजीत सिंह के शासन में रियासत ने कला, विशेषकर शास्त्रीय संगीत को खूब बढ़ावा दिया। पूरे दोआबा के संगीतकार संरक्षण और पहचान के लिए कपूरथला की ओर देखते थे। लेकिन 1947 के बाद, जैसे ही रियासतें आधुनिक भारत में विलीन हुईं, वह पुरानी संरक्षण प्रणाली समाप्त हो गई। संगीतकारों ने न केवल अपनी आजीविका खो दी, बल्कि अपनी पूरी जीवन शैली ही खो दी।

3.4 आध्यात्मिक और धार्मिक केंद्र:

सिख कीर्तन परंपरा में जोड़ी वादन गुरुओं के काल से ही गहराई से जुड़ा हुआ था। दोआबा के कई रागी जत्थों और नामधारी सिखों ने पखावज के खुले बोलों को तबले और जोड़ी पर बजाने की कला में महारत हासिल की थी। वहीं दूसरी ओर, सूफी दरगाहों पर होने वाली क़व्वाली में बजने वाला ढोलक और तबला एक अलग ही आध्यात्मिक लय प्रस्तुत करता था।

4. 1947 की त्रासदी

अगस्त 1947 के बाद, दोआबा की संगीत की दुनिया खामोश हो गई। यह खामोशी सिर्फ अस्थायी नहीं थी, बल्कि यह हर पहलू में गहराई तक समा गई: लोग कैसे सीखते थे, वे क्या बजाते थे, और यहाँ तक कि वे जो कहानियाँ सुनाते थे, उनमें भी। विभाजन ने केवल एक सीमा रेखा ही नहीं खींची; इसने एक सांस्कृतिक विच्छेद के रूप में काम किया। आँकड़े इसे स्पष्ट रूप से दर्शाते हैं, जालंधर से मुसलमानों का लगभग पूरी तरह से चले जाना। तबला वादकों के लिए, यह नुकसान बहुत बड़ा था। घराने के प्रमुख, मियाँ कादर बक्श, अब लाहौर में बस गए थे। विभाजन के बाद दोआबा के संगीत के छात्रों के लिए लाहौर पहुँच से बाहर हो गया।

4.1 **उस्तादों का पलायन**

विभाजन के दौरान हुई सांप्रदायिक हिंसा ने दोआबा के कई दिग्गज मुस्लिम तबला, पखावज और सारंगी वादकों को अपनी जन्मभूमि छोड़ने पर विवश कर दिया। शाम चौरासी, जालंधर और कपूरथला के अनेक उस्ताद रातों-रात अपनी जान बचाकर पश्चिमी पंजाब (पाकिस्तान के लाहौर और लायलपुर आदि) पलायन कर गए। लगभग सभी मुस्लिम पूर्वी पंजाब छोड़कर चले गए, और उनके साथ ही वाद्य यंत्र बनाने वाले और संगीत की धरोहर को सहेजने वाले भी चले गए। पखावज और तबले के लिए चमड़ा तैयार करना जानने वाले अधिकांश कारीगर मुस्लिम थे। स्थानीय मिट्टी से स्याही बनाने का रहस्य भी खो गया। चूंकि संगीत की शिक्षा पूरी तरह से मौखिक थी, इसलिए जब उस्ताद विस्थापित हुए, तो उनके साथ ताल की अनगिनत दुर्लभ बंदिशें, रेले, और तिहाइयां भी सरहद पार चली गईं। जो शागिर्द भारत में रह गए, उनकी तालीम अधूरी रह गई। यह केवल लोगों का विस्थापन नहीं था; यह ज्ञान का, कला का और एक पूरी सांगीतिक शब्दावली का विस्थापन था।

लाहौर में खलीफा तक पहुँच न होने के कारण, दोआबा में बचे तबला वादकों को एक बड़े संकट का सामना करना पड़ा। अपने मार्गदर्शक और परंपरा के रक्षकों के बिना, दोआबा की अनूठी तबला शैली के लुप्त होने का खतरा पैदा हो गया, जिस पर दिल्ली और बनारस की अधिक प्रभावशाली शैलियों के हावी होने का जोखिम था।

4.2 **संगत का संकट**

यह बदलाव गुरुद्वारों से अधिक और कहीं स्पष्ट नहीं था। रबाबी, जो मुस्लिम संगीतकार थे और जोड़ी बजाते थे, वे जा चुके थे। अब कीर्तन के लिए जटिल संगत सँभालने वाला कोई नहीं बचा था। दोआबा में सिख भक्ति संगीत में तेजी से बदलाव आया। पुराने तार वाले वाद्य यंत्रों की जगह हारमोनियम ने ले ली। साधारण तरीके से बजाए जाने वाले तबले ने पुरानी और भव्य जोड़ी-पखावज की जगह ले ली, और भक्ति संगीत की ध्वनि रातों-रात बदल गई।

5. संस्थागत पुनर्निर्माण

पारिवारिक वंशावलियों के छिन्न-भिन्न होने और कपूरथला के शाही संरक्षण के खत्म होने के बाद, दोआबा में पंजाब घराना पतन की कगार पर खड़ा था। जैसे-जैसे वे पुरानी व्यवस्थाएं गायब हुईं, आधुनिक भारतीय राज्य ने इसमें कदम रखने की कोशिश की। अचानक, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय एक अप्रत्याशित रक्षक बनकर उभरा, और वहां प्रकट हुआ जहां पुरानी व्यवस्था फीकी पड़ चुकी थी।

5.1 आकाशवाणी जालंधर की भूमिका

विभाजन के बाद, आकाशवाणी का जालंधर स्टेशन उत्तर भारतीय शास्त्रीय संगीतकारों के लिए एक जीवन रेखा बन गया। तबला वादकों के लिए, विशेष रूप से वे जो लाहौर से उजड़ कर आए थे या वे स्थानीय कलाकार जिनके आश्रयदाता गायब हो चुके थे, आकाशवाणी एक संजीवनी था। अचानक, वे "स्टाफ आर्टिस्ट" के रूप में एक निश्चित सरकारी वेतन पा सकते थे। सामंती व्यवस्था में एक सेवक के रूप में देखे जाने के बजाय, तबला वादकों को अब सरकारी कर्मचारियों के रूप में वास्तविक दर्जा मिल गया था। इस तरह की सुरक्षा ने सब कुछ बदल दिया। एक नियमित वेतन के साथ, संगीतकार शारीरिक श्रम के माध्यम से जीवित रहने के लिए संघर्ष करने के बजाय, वास्तव में अपने रियाज़ पर ध्यान केंद्रित कर सकते थे।

आकाशवाणी ने संगीतकारों को पहचान मिलने के तरीके को भी बदल दिया। उन्होंने एक ग्रेडिंग प्रणाली शुरू की। जालंधर और होशियारपुर के आसपास के ताल वादकों के लिए, सम्मान के इस नए तमगे ने उस पुरानी व्यवस्था की जगह ले ली, जहां केवल एक खानदानी उस्ताद की स्वीकृति ही मायने रखती थी। अब तबला वादक को किसी विशेष समुदाय या वंशावली से होने की आवश्यकता नहीं थी। यदि किसी ने ऑडिशन पास कर लिया, तो उसको उसका ग्रेड मिल जाता था। इसने कला के इस रूप को प्रतिभा और दृढ़ संकल्प वाले किसी भी व्यक्ति के लिए खोल दिया।

आकाशवाणी के पास सख्त समय सीमा थी, प्रसारण का समय लगभग 15 या 30 मिनट का होता था। तबला वादकों को पखावज-शैली के लंबे और विस्तृत एकल वादन में बदलाव करना पड़ा। अब, उन्हें रेडियो के अनुकूल एक चुस्त और प्रभावशाली प्रारूप में सब कुछ समाहित करना होता था। पेशकारों को छोटा कर दिया गया। कायदे और रेलों ने मुख्य स्थान ले लिया। चूँकि आकाशवाणी में गायन और सितार संगीत का बहुत अधिक प्रसारण होता था, इसलिए तबला वादकों को केवल एकल वादन में ही नहीं, बल्कि संगत में भी महारत हासिल करनी पड़ी।

इस तरह दोआबा की तबला शैली का विकास हुआ: जो कि स्पष्ट, साफ़ और तंत्री वाद्यों के साथ बजाने के लिए अनुकूलित थी। दोआबा के संगीतकार बहुत ही सहयोगी होने, कभी हावी न होने और हमेशा मुख्य कलाकार को निखारने के लिए जाने जाने लगे। आकाशवाणी जालंधर स्थानीय तालों का मुख्य संग्रह भी बन गया। तबला वादकों ने 'गीत' से लेकर 'गज़ल' और लोकगीतों तक हर चीज़ में संगत की, इसलिए जब शास्त्रीय संगीत के कार्यक्रम दुर्लभ थे, तब भी पंजाब शैली का खुले हाथ का ठेका लोगों के घरों में गूंजता रहा।

आकाशवाणी जालंधर के प्रयासों के परिणाम स्वरूप, पंजाब घराने की आवाज़, विशेष रूप से वह गहरी और गूंजती हुई तबले की थाप, पुराने उस्तादों के जाने के बाद भी कभी फीकी नहीं पड़ी।

5.2 दूरदर्शन जालंधर की भूमिका

अगर आकाशवाणी ने संगीत को जीवित रखा, तो दूरदर्शन जालंधर ने इसे स्क्रीन पर जीवंत कर दिया। 1970 के दशक में, जब दूरदर्शन ने प्रसारण शुरू किया, तो सब कुछ बदल गया; अचानक लोग वास्तव में देख सकते थे कि पंजाब घराना कैसे बजता है। पंजाब शैली हाथों की अपनी कठिन और विशिष्ट हाथ के रखाव के लिए जानी जाती है। ऑडियो माध्यम (रेडियो) में जहाँ श्रोता केवल 'बोल' सुन सकते थे, वहीं दूरदर्शन ने दर्शकों को तबला वादकों की उंगलियों का जादू, उनके बैठने का अंदाज़, और उनके चेहरे के भावों को देखने का अवसर दिया। तबले में 'निकास' (हाथ से ध्वनि उत्पन्न करने का तरीका) अत्यंत महत्वपूर्ण होता है। दूरदर्शन के कार्यक्रमों ने युवा शोधार्थियों और शिक्षार्थियों को घर बैठे उस्तादों के निकास और तकनीक को देखने और समझने का मौका दिया।यह छात्रों के लिए एक बहुत बड़ी सफलता थी, यहां तक कि दूरदराज के गांवों के बच्चे भी "खुला हाथ" तकनीक को देख और सीख सकते थे, खुले हाथ का वह तरीका जो पंजाब के तबले को इतना अनूठा बनाता है। अल्लाह रक्खा ख़ां जैसे दिग्गजों को छात्र प्रदर्शन करते हुए देख सकते थे, और कलाई की हर हरकत या हाथ की हर थाप को बारीकी से समझ सकते थे।

6. सांस्कृतिक स्थलों के रूप में सम्मेलन

यद्यपि सरकारी और राजकीय संस्थानों ने ताल वादकों को वित्तीय स्थिरता प्रदान की, लेकिन संगीत की वास्तविक धड़कन संगीत सम्मेलनों में संरक्षित रही, जहाँ ताल वादकों के कौशल और कला प्रवीणता को खुले तौर पर चुनौती दी जाती थी।

6.1 श्री बाबा हरिवल्लभ संगीत सम्मेलन

सबसे पुराना हिंदुस्तानी शास्त्रीय संगीत समारोह हरिवल्लभ सम्मेलन है, जिसकी शुरुआत 1875 में जालंधर के देवी तालाब मंदिर में हुई थी। विभाजन के बाद, यह उन प्रमुख स्रोतों में से एक था जिसने दोआबा की सांस्कृतिक पहचान के पुनर्निर्माण में मदद की। विभाजन के बाद दोआबा

अलग-थलग पड़ गया था, लेकिन हरिवल्लभ ने शेष भारत को यहाँ ला दिया, और देश भर के संगीतकार जालंधर में एकत्रित हुए। यह सम्मेलन उत्तर भारत के विखंडित हो चुके संगीत समुदाय के लिए एक भावुक पुनर्मिलन था।

दोआबा के किसी भी तबला वादक के लिए, हरिवल्लभ में प्रदर्शन करना सबसे बड़ी परीक्षा थी, यह एक ऐसी मोहर थी जिसने शाही दरबारों की स्वीकृति का स्थान ले लिया था। शाही दरबार विशिष्ट और कठोर थे, लेकिन हरिवल्लभ ने अपने दरवाजे सभी के लिए खुले रखे थे। इस बदलाव ने तबले के ज्ञान को केवल पुराने वंशानुगत परिवारों तक सीमित न रखकर मध्यम वर्ग तक पहुँचने का अवसर दिया। यदि हरिवल्लभ के दर्शकों ने, जो अपने ज्ञान और गलतियों को माफ न करने के लिए जाने जाते थे, किसी को स्वीकार कर लिया, तो वह एक उस्ताद मान लिया जाता था। इस सम्मेलन ने अकेले ही दोआबा के तबले के उच्च स्तर को बनाए रखा, और इस शैली को संकीर्ण या मात्र लोक-शैली में बदलने से रोका।

6.2 **बावरा संगीत सम्मेलन और स्थानीय सभाएं**

बावरा संगीत सम्मेलन जैसी स्थानीय सभाओं ने जमीनी स्तर पर एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। जालंधर और आसपास के कस्बों में होने वाले इन छोटे सम्मेलनों में प्रयोग करने की अधिक छूट थी। ये हरिवल्लभ की तुलना में कम कठोर थे। यहाँ अक्सर शास्त्रीय ताल संरचनाओं के साथ लोक लयों के संलयन का अभ्यास किया जाता था। बावरा सम्मेलन अक्सर संगीत के पुराने, आध्यात्मिक रूपों पर केंद्रित होता था। यह दोआबा के तबले में पखावज के प्रभाव को संरक्षित रखने के लिए महत्वपूर्ण था।

फगवाड़ा, नवांशहर, नकोदर और फिल्लौर जैसे कस्बों में, औपचारिक दरबारी प्रस्तुतियों की जगह अमीर व्यापारियों के घरों में आयोजित होने वाली अनौपचारिक 'बैठकों' ने ले ली। ये घनिष्ठ सभाएं दोआबा के तबले को संरक्षित करने के लिए आवश्यक बन गईं। साथ ही, इन्होंने पेशकार और कायदे की उन सूक्ष्म बारीकियों को भी सुरक्षित रखा जो अक्सर बड़े उत्सवों के मंचों पर खो जाती हैं।

6.3 **कपूरथला बसंत और अन्य मेले**

संगीत का पुनर्निर्माण और विकास क्षेत्रीय मेलों पर भी निर्भर था, जिन्होंने "लोक-शास्त्रीय" निरंतरता को बनाए रखा। महाराजा जगतजीत सिंह द्वारा शुरू किया गया 'कपूरथला बसंत पंचमी मेला' राजशाही के लुप्त होने के काफी समय बाद तक शास्त्रीय संगीत की मेजबानी करता रहा, जिससे जनसाधारण के लिए भी ताल की पहुँच बनी रही। इसी तरह, दोआबा क्षेत्र में होने वाले विभिन्न उर्स(सूफी संतों की पुण्यतिथियां) कव्वाली और तबला वादन की परंपरा को कायम रखते थे, जिससे विभाजन-पूर्व पंजाब की तरह ही संगीत में मुस्लिम-हिंदू साझी संस्कृति बनी रही।

7. धार्मिक संस्थानों की भूमिका

1947 के विभाजन से हुई गंभीर क्षति की पूर्ति के लिए दोआबा सहित पूरे पंजाब में ताल विद्या के पुनर्निर्माण में सिख संस्थाओं और गुरुद्वारों ने ऐतिहासिक रक्षक की भूमिका निभाई, शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी (SGPC), चीफ खालसा दीवान और विशेष रूप से भैणी साहिब (नामधारी संप्रदाय) जैसे केंद्रों ने सक्रिय रूप से संगीत संरक्षण का बीड़ा उठाया। एक ओर 'नामधारी दरबार' के सतगुरु जगजीत सिंह जी ने गुरुकुल स्थापित कर पंजाब के कई कलाकारों को संरक्षण दिया जिसमें दोआबा के भी कई कलाकार शामिल थे और पंजाब घराने के पारंपरिक 'बाज' व 'जोड़ी-पखावज' को पुनर्जीवित किया। वहीं दूसरी ओर, दोआबा क्षेत्र में विशेष रूप से संगीत प्रोफेसर दर्शन सिंह कोमल ने 'चीफ खालसा दीवान' के रबाबी उस्ताद भाई साईं दित्ता जी से तालीम लेकर दोआबा में 'गुरु नानक संगीत विद्यालय' की स्थापना की। क्षेत्रीय टकसालों, सिख मिशनरी कॉलेजों, गुरुद्वारों और गुरमत संगीत अकादमियों ने अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इन संस्थाओं ने गुरबाणी कीर्तन के अभिन्न अंग के रूप में तबला और 'पंजाब की जोड़ी' वादन को न केवल अनिवार्य बनाए रखा, बल्कि इसे सुदृढ़ संस्थागत और आर्थिक समर्थन भी प्रदान किया। परिणामस्वरूप, जहाँ एक ओर शेष बचे हुए कलाकारों को सम्मानजनक आश्रय मिला, वहीं दूसरी ओर नई पीढ़ी के लिए विधिवत सांगीतिक शिक्षा का एक ऐसा मजबूत ढांचा तैयार हुआ जिसने पंजाब की ताल वादन कला को एक नया जीवन और स्थायी आधार दिया।

8. निष्कर्ष

1947 के विभाजन का प्रभाव केवल भौगोलिक सीमाओं तक ही सीमित नहीं था, बल्कि इसने दोआबा के सांस्कृतिक आधार को भी प्रभावित किया। मुस्लिम कारीगरों के जबरन विस्थापन और लाहौर से अलगाव ने दोआबा के अद्वितीय लयबद्ध चरित्र, विशेष रूप से तबला परंपरा के लिए एक अस्तित्वगत संकट पैदा कर दिया था। हालाँकि, 1947 के बाद दोआबा में तबले का इतिहास पतन का इतिहास नहीं है, बल्कि यह जीवंतता और अनुकूलन का इतिहास है। वंशानुगत उस्तादों द्वारा छोड़े गए शून्य को आकाशवाणी के संस्थागत संरक्षण द्वारा भरा गया, जिसने संगीतकारों को आर्थिक रूप से सहारा प्रदान किया। दूरदर्शन ने प्रस्तुतियों को रिकॉर्ड करना शुरू किया, जिससे यह कला नए दर्शकों तक पहुँची। हरिवल्लभ और

SWAR SINDHU
(National Peer-Reviewed/Refereed Journal of Music)
ISSN 2320–7175 (O) | Volume 14, Issue 01, January-June, 2026

बावरा संगीत सम्मेलनों ने इस परंपरा को जीवित रखा, और संगीत को एक ऐसी आध्यात्मिक स्पर्धा में बदल दिया जिसने हर किसी को उत्कृष्टता हासिल करने के लिए प्रेरित किया। सिख संस्थाओं, गुरुद्वारों और नामधारी संप्रदाय ने कलाकारों को आश्रय और संस्थागत समर्थन देकर दोआबा की ताल परंपरा (विशेषकर तबला और जोड़ी वादन) को पुनर्जीवित किया। अब, दोआबा के तबले की अपनी एक अलग पहचान और स्वभाव है। इसकी शैली मजबूत और गुंजायमान है, जो पुरानी पखावज परंपराओं से गहराई से जुड़ी है, फिर भी यह समकालीन और ग्रहणशील है। यह विरासत और नवाचार का एक ऐसा मिश्रण है, जो अब केवल परिवारों तक सीमित नहीं है, बल्कि शिक्षा प्रणाली के माध्यम से सीखने के इच्छुक किसी भी व्यक्ति तक पहुँचाया जा रहा है। 1947 में जो लय बिखर गई थी, वह गायब नहीं हुई। निश्चित रूप से इसका विकास हुआ, लेकिन इसका अस्तित्व कायम रहा। ताल ने बस अलग-अलग हाथों में अपना एक नया घर ढूंढ लिया, और शायद इसी वजह से यह अब और भी अधिक शक्तिशाली हो गई है।

संदर्भ

मैनुअल, पी. (1993). *कैसेट संस्कृति: उत्तर भारत में लोकप्रिय संगीत और प्रौद्योगिकी* (Cassette Culture: Popular Music and Technology in North India). यूनिवर्सिटी ऑफ शिकागो प्रेस.

न्यूमन, डी. एम. (1990). *उत्तर भारत में संगीत का जीवन: एक कलात्मक परंपरा का संगठन* (The Life of Music in North India: The Organization of an Artistic Tradition). यूनिवर्सिटी ऑफ शिकागो प्रेस.

कुरैशी, आर. बी. (1986). *भारत और पाकिस्तान का सूफी संगीत: कव्वाली में ध्वनि, संदर्भ और अर्थ* (Sufi Music of India and Pakistan: Sound, Context and Meaning in Qawwali). कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस.

रॉय, ए. जी. (2010). *भांगड़ा मूव्स: लुधियाना से लंदन और न्यूयॉर्क तक* (Bhangra Moves: From Ludhiana to London and New York). एशगेट पब्लिशिंग.

शर्मा, वाई. (2005). "हरिवल्लभ संगीत सम्मेलन: एक ऐतिहासिक अवलोकन।" *जर्नल ऑफ पंजाब स्टडीज़*, 12(1), 45-62.

सिंह, जी. (2011). *पवित्र ध्वनियाँ: कीर्तन की सिख परंपरा* (Sacred Sounds: The Sikh Tradition of Kirtan). ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस.

तनेजा, ए. (2010). *प्रकृति, संस्कृति और पंजाब का विभाजन* (Nature, Culture, and the Partition of Punjab).

त्रिवेदी, एम. (2000). *उत्तर भारत में संगीत का सामाजिक इतिहास* (The Social History of Music in North India). मनोहर पब्लिशर्स.

वर्मा, पी. (2002). *पंजाब की संगीत परंपरा*. पंजाबी यूनिवर्सिटी पटियाला प्रेस.

बख्ले, जानकी. (2005). *Two Men and Music: Nationalism in the Making of an Indian Classical Tradition*. ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस.

कौर, नवरीत. (2010). *Musical Heritage of Punjab: A Study of Harballabh Sangeet Sammelan*. पंजाब यूनिवर्सिटी प्रेस, चंडीगढ़.

शर्मा, अमल दाश. (1993). *Musicians of India: Past and Present*. नाया प्रोकाश, कलकत्ता.

मिस्त्री, अबन ई. (1999). *पखावज और तबला के घराने एवं परंपराएं*. पं. पलुस्कर स्मारक समिति.

"संगीताचार्य दर्शन सिंह कोमल" आर्काइव। darshansinghkomal.com.

नामधारी जोड़ी-पखावज संरक्षण दस्तावेज़। giansinghjori.com.